गुरुवाणी

आप एक अच्छा संकल्प लें कि चरित्रवान बनें।

–पीठाधीश्वर बाबा सिद्धार्थ गौतम राम जी

अघोरेश्वर निनाद

अघोरान्ना परो मंत्रो। नास्ति तत्वम् गुरोः परम्।।

R.N.I.UPHIN-2000/3008 Postal No-G-2/VSI (E)-04/2016-18

वर्ष-१६, अंक ४, वाराणसी। रविवार २८ फरवरी २०१६ ई० सहयोग राशि ४.२५

प्राण

प्राण का अर्थ पंचभूत से निर्मित शरीर में सर्वशक्तिमान परम पिता परमेश्वर का सूक्ष्म रूप में विराजमान होना है। एकात्म परमसत्ता शरीर रूपी पिण्ड में विराजमान होकर ब्रह्माण्ड में चलायमान होता है तथा प्रत्येक जीव में परम पिता परमेश्वर के अंशभूत से उनके सभी लक्षण विद्यमान रहते हैं। इसी प्राण रूपी अंश को परम तत्त्व, शिव तत्त्व अथवा आत्माराम के रूप में जाना जाता है। यानी इस चराचर जगत के जीवन्तता, चलायमानता, सक्रियता को ही प्राण कहते है। प्राण एक अदृश्य अद्भुत ऐसी शक्ति है जिससे न केवल जलचर, थलचर जीवित रहते हैं बल्कि उनका जीवन चक्र भी नियमित रूप से चलता रहता है। जिस प्रकार शक्ति के अभाव से शिवत्व शव तुल्य हो जाता है उसी प्रकार प्राण रहित जीवधारी व तन मिट्टी तुल्य यानी व्यर्थ हो जाता है। अत: जब तक प्राण है तब तक ही सृष्टि के इस अदृश्य अलौकिक शक्ति ''प्राण'' की गहन छानबीन, समीक्षा, विश्लेषण किया जाता रहा है, परन्तु करोड़ों वर्षों से अभी तक यह मानव के लिये रहस्य ही बना है; इसीलिये इसे जगत-नियन्ता, पख्रह्म परमेश्वर की आदि लीला से सम्बोधित करते हैं। चाहे जीव-जन्तु हो, मानव हो, पादप जगत हो, वह उस अलौकिकता के अभाव में मृत्यु या निष्प्राणता को प्राप्त हो जाता है एवं जीवन लीला या मानव की इहलीला समाप्त हो जाती है। अत: प्राण ही वह अमूल्य धरोहर है, आदि शक्ति की शक्ति का प्रादुर्भाव है, जिससे चेतना से युक्त होकर, संवेदना से परिपूर्ण होकर जीवन चलता रहता है। प्राण को व्यापक अर्थों में पख्रह्म परमेश्वर का अंशभूत माना जाता है, जिसे निराकार, निरामय कहा गया है जो शरीर अथवा सृष्टि की संरचना में व्याप्त होकर साकार रूप धारण करता है। दृष्टान्त स्वरूप मदमस्त हाथी से लेकर दृश्यमान चींटी तक का जीवन, प्राण के उस प्राणी में विराजमान होने तक ही होता है, इसके निकलते ही शरीर छोड़ते ही वह जड़ पदार्थ की श्रेणी में आबद्ध होकर अस्तित्व विहीन हो जाता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सृष्टि का मतलब प्राण से संयुक्त होना ही है। यद्यपि सृष्टि में प्रकृति द्वारा प्राण को किसी शरीर या आकार विशेष में एक सुनिश्चित अवधि या समय के लिये ही सीमित कर दिया जाता है, जो सभी प्राणधारियों पर समान रूप से लागू है, उस अवधि के पश्चात् एक दिन अनिवार्यता के अनुसार उस आकार को प्राणहीन यानी बेजान बनना पड़ता है, जिसे मृत्यु कहते हैं। इसीलिये जीवधारी के मृत्यु को एक अपरिहार्य शाश्वत सत्य बताया गया है, मानव, जो इस चराचर जगत का सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, चाहे जितना भी ज्ञान, शक्ति अर्जित कर ले, पर एक दिन उसे भी मृतक अवस्था को प्राप्त करना ही पड़ता है तथा उसके अथवा परिजनों के लाख चाहने पर भी उसका प्राण-पखेरू सदा के लिये विलुप्त हो जाता है। प्राण की विशेषता को व्याख्यापित करत हुये मुल्तानी भजन की निम्न पंक्तियों में इसके लक्षणों का दिग्दर्शन या बोध कराते हुये शरीर एवं प्राण की तुलना पिंजरे एवं तोते से निम्न प्रकार की गई है।

''कर लो जतन हजार तोते उडजाणा,
ऐ तोता है बडा अनोखा, हिं दिन देवे जरूरी धोखा, नई इसदा एतवार, तोते उड जाना। कर लो जतन हजार तोते....।

सेवा इसदी करिये पूरी, कुटकुट रोज खवाओ चूरी,
फिर भी नई वणदा यार, तोते उड जाना।।

जोगी जना ने जोर लगाया; ऐ तोता जुड़ने नहीं पाया,
थक-थक गिन सब हार तोते उड जाना
कर लो जतन हजार.....

जब तोता उडने पे आवे, हरिया फेर कदी न आवे, लंबी लेने उडार तोते उड जाना,
कर लो जतन हजार.....

जद सी तोता तो सो लक्ख, हुण पिंजरे दे रह गिन कक्ख,
हुण ए हो गया बेकार तोते उड जाना,
कर लो जतन हजार.....

चाहे कित्ती साल बितावे पर जब ये उडन पे आवे,
मिनट न लेसी चार तोते उड जाना।
कर लो जतन हजार.....

गौरी शंकर क्यों पछतावो, खाली पिंजरा तीली लावो;
ए जग दी है चाल तोते उड जाना।
कर लो जतन हजार.....

इसी को दृष्टिगत रखते हुए हजारों हजार वर्षों से हमारे सनातन धर्मावलम्बियों में शव यात्रा के समय ''राम नाम सत्य है'' का उच्चारण किया जाता है जिसमें प्राण को ही ''रामनाम'' यानी परमपिता सर्वशक्तिमान परमेश्वर को ही ध्यान में रक्खा गया है, इसी प्रकार मुस्लिम धर्म में भी जनाजे के समय मुस्लिम बन्धु मौन होकर उस अल्लाह या परवरदिगार को याद करते हैं जिनकी इनायत से उनका अंशभूत अभी तक इस मृतक शरीर को प्राणवान बना रक्खा था। प्राणवान शरीर के निष्प्राण होने पर भी उसकी प्रतिष्ठापरक अन्त्येष्टि इसी प्राण के द्वारा शरीर को ग्रहण किये जाने के ही कारण की जाती है। जैसे किसी संत महात्मा की गद्दी उनके शरीर छोड़ने पर भी निरंतर श्रद्धा-सम्मान का केन्द्र बनी रहती है, उसी प्रकार मानव के प्राण उत्सर्ग के उपरान्त उस व्यक्ति की, समाज में उसके द्वारा किये गये कार्यों की समीक्षा होती है एवं समाज तद्नुसार उन्हें उनके जीवन को प्रतिष्ठा देता अथवा अपयश का भागी मानता है।

अस्तु प्राणवान होना ही जीवन है, मानव जीवन चक्र को यदि हम ध्यान में रक्खे तो माँ के कोख में भ्रूण के आने से लेकर मृत्यु तक की अवधि ही जीवन्त जीवन भाग कहलाता है। मानव अथवा जीवधारियों द्वारा प्रतिपल साँस लेना तथा छोड़ना, पादप जगत के द्वारा भी वायुमण्डल एवं वातावरण से वर्ज्य पदार्थ को ग्रहण कर आक्सीजन को छोड़ना ही उनका जीवन कहलाता है।

ये समस्त क्रियायें इस प्राणरूपी अदृश्य रहस्यमयी प्राकृतिक अनुदान के ही कारण चलती रहती है। चौरासी लाख योनियों में प्राणियों को आबद्ध किया गया है, परन्तु इन समस्त में मानव योनि को उत्कृष्ट बताया गया है। क्योंकि शरीर धारण कर परमात्मा का अंशभूत प्राण ही अपनी जीवन यात्रा में नाना प्रकार के अनुभवों का अनुभव करते हुए अपने कर्त्तव्य को करते हुये पुन: प्रकृति में विलीन हो जाता है तथा उसका प्राण अपने उस विराट पख्रह्म में पुन! समाहित होकर अपने प्रारब्धानुसार फलाफल भोगने हेतु उद्यत होता रहता है। यही सृष्टि का जीवन चक्र कहलाता है। शरीर या काया में प्राण के रक्षार्थ ही जीव को भोजन लेना पड़ता है तथा उपापचयी क्रियाओं का

शेष पृष्ठ दो पर

अघोरेश्वर की महाशिवरात्रि

शिव-पुराण की मान्यता के अनुसार सृष्टि के संचालन हेतु फाल्गुन कृष्ण चतुर्दशी के दिन शिव एवं शक्ति का सायुज्य यानी शिव विवाह हुआ था। शिव को प्रकृति ने शक्ति से परिपूरित करके स्त्री एवं पुरुष दोनों को एक दूसरे के पूरक होना सिद्ध किया गया है। शिव पार्वती का संयोग शिव को अर्धनारीश्वर का रूप देकर उन्हें जगत के हित हेतु विषपान करके कण्ठ तक ही रखने की शक्ति प्रदान करती हैं एवं जिन्हें हम नीलकंठ की संज्ञा से विभूषित करते हैं। शक्ति के संयोग से सृष्टि में कुछ भी अलग नहीं है, यही सृष्टि का रहस्य भी है। पंचमुखी शिव के भी अलग-अलग कार्य हेतु शक्ति सम्पन्न किये जाने में प्रकृति का ही हाथ है। शिव के ही पाँचवे मुख को अघोर कहते हैं। अघोर के आश्रय में आने पर निकृष्टता का भी स्थायी रूपान्तरण उत्कृष्टता में हो जाता है यानी अघोरेश्वर का आश्रम, अघोरेश्वर की शरण निन्दित कर्म करने वालों को भी शुद्ध-बुद्ध बनाकर शिवतत्व से परिपूरित कर देता हैं। शिव प्राणी के विकारों के नाश करने वाले हैं तथा आत्माराम के संतुष्टिदाता होते हैं, शिव रूप अघोरेश्वर बालक के समान परम स्वच्छ शुद्ध एवं निर्विकार होते हैं, ये विश्व के स्वामी भी है इसीलिये इन्हें ''त्र्यम्बक'' यानी ब्रह्माण्ड के त्रिदेव के अम्ब यानी आधार भी कहा जाता है।

''अघोरान्नापरो मंत्र: नास्ति तत्वं गुरु: परम्'' में औघड़ गुरु को साक्षात शिव के रूप में देखा जाता है जो अपने भक्तों के लिए सर्वस्व होते हैं तथा वे निरन्तर भक्तों को शक्ति (पराक्रम) से सम्पन्न कर तन, मन, धन एवं बुद्धि का परिष्कार करते रहते है, सदा समाज में सबके लिये समभाव से दर्शन देते हैं, वे न तो बदले में कुछ अपेक्षा करते है न अपनी आज्ञा को मानने हेतु बाध्य करते हैं इसीलिये तो उन्हें औघड़-अघोर या अघोरेश्वर आशुतोष, भूतनाथ अथवा महादेव कहा गया है। वे सुर-असुर दोनों के ही तप या परिश्रम से प्रसन्न होकर ''तथास्तु'' का वरदान देते है। क्योंकि वे सदा अमृतमय हैं, विषपान करने एवं उसे निष्क्रिय करने की असीम क्षमता के स्वामी हैं।

इस कलिकाल में अघोरश्वर शिव को समाज के त्राण हेतु मानव मानव रूप में पृथ्वी पर आना पड़ता है जो समय एवं काल के अनुरूप समाज को आवश्यकतानुसार उपदेश, निर्देश परोक्ष एवं अपरोक्ष रूप से दर्शन देकर सर्वत्र कल्याण एवं मंगल करते रहते हैं। मानव के आँखों के सामने छाये धुंध के कारण ही हम वह अपरा शक्ति दिखायी नहीं देती। जबकि दर्शन मात्र से ही अनेकों विकार एवं मन का भय दूर हो जाता है।

भूतनाथ के औघड़ी दरबार में सुर-असुर, भूत, प्रेत, साँप, बिच्छु सबको स्थायी त्राण मिलता है। कहीं भी अभेद नहीं है, अमृत को आवश्यकतानुसार समाज में वितरित एवं स्वयं शिव औघड़दानी के द्वारा हलाहल का पान करके समाज से विकारों का अवशोषण किये जाने की परम्परा है। महाशिवरात्रि का पर्व का संदेश आशुतोष औघड़दानी को हृदय में उतारकर उनके अनुदेशों, निर्देशों का परिपालन करने तथा समस्त प्राणियों के प्रति परमार्थ भाव का उदय ही है। आइये! इस पर्व पर अपने सदाशिव औघड़दानी से समवेत प्रार्थना करें कि हमारा तन, मन एवं धन सदा परमार्थ में लगा रहे, पल-पल विकारों का क्षय हो, हमारे अन्दर संतुष्टि की अद्भुत मस्ती छायी रहे तथा प्रतिपल हमारी अन्तर्मात्मा से आवाज निकलती रहे कि ''आशुतोष तुम अवढर दानी, आरत हरहुँ दीन जन जानी।'' प्राणी को सर्वविकारों से मुक्त करते हुए भूत भावन भगवान अघोरेश्वर की उपमा समुद्र से की गयी है। पात्रता के अनुसार भक्त के तन, मन में वे जल की भाँति आकार ग्रहण कर उसे हर प्रकार से विपत्तियों से सदा रक्षा करते हुए अपने कल्याणकारी स्वरूप का दिव्य दर्शन उसके आत्माराम में कराते रहते हैं।

C-अघोराचार्य बाबा कीनाराम अघोर शोध एवं सेवा संस्थान् के लिये प्रकाशक एवं मुद्रक **अरुण कुमार सिंह** द्वारा महादेव प्रेस, बी.3/335, रविन्द्रपुरी कॉलोनी, भेलूपुर, वाराणसी (उ0प्र0) से मुद्रित एवं प्रकाशित।

सम्पादक : चन्द्र नाथ ओझा

ग्राफिक्स : आशीष कुमार बरनवाल

☎ **0542-2277155.**
e-mail–kinaram@rediffmail.com
www.aghorpeeth.org

प्रथम पृष्ठ का शेष

प्राण

संचालन प्राकृतिक रूप से चलता रहता है। इसी आधार पर पादप वैज्ञानिक सर जगदीशचन्द्र बसु ने पौधों में भी जीवंतता होती है को सिद्ध किया था। अन्य जीवधारियों की तरह पौधों द्वारा भी पृथ्वी से खनिज लवण एवं जल लेकर तथा वायुमण्डल से कार्बन डाई आक्साइड गैस को अवपोषित कर पौधे हरे भरे होकर बीज से प्रारम्भ होकर विशालकाय वृक्ष का आकार लेकर सैकड़ों वर्षों तक हरा भरा बना रहना, पतझड़ के पश्चात् पुन: नये कोपलों से लद जाना, नियमित रूप से फूल एवं फल आना सभी क्रियायें पादप जगत के प्राण धारण करने से ही सम्पन्न होती रहती है।

अब प्रश्न यह उठता है कि आखिर इस रहस्यमय प्राण का स्वरूप कैसा है, यह किन अवयवों से विनिर्मित होता है, इसका विश्लेषण क्या है? आदि आदि तथ्यों पर मानव समुदाय द्वारा सोचा जाना उसके खोजी स्वभाव यानी जिज्ञासु प्रवृत्ति का द्योतक रहा है। ऋषि महर्षियों से लेकर आज भूमण्डल पर स्थित अनेकानेक राष्ट्रों विकसित, विकासशील में इसके अन्वेषण हेतु खोज जारी है लेकिन यह घोर विस्मयकारी है कि अभी तक स्थिति ज्यों की त्यों है एवं जल में लकीर खींचे जाने की तरह सिद्ध हुई है। मानव के प्रयासों द्वारा शरीर में प्राणधारण करने की अवधि में अपेक्षानुरूप विस्तार तो अवश्य किया गया है परन्तु अन्तत: मृत्यु की शाश्वता को स्वीकार करना ही पड़ा है, अत: हम निष्कर्षत: घोषित कर सकते हैं कि प्रकृति की इस अलौकिक शक्ति 'प्राण' की खोज में रंच मात्र की सफलता मानव समुदाय को अभी तक नहीं हो सकी है। इस शक्ति को फलत: हम प्राणेश्वर-अघोरेश्वर या परमपिता परमेश्वर आदि विभिन्न नामों से याद करते हैं। जिनकी विशेषताओं को इंगित करते हुये आदि, अनादि, अनामय, अविचल, अविनाशी की संज्ञा से विभूषित किया गया है तथा मानव द्वारा अपने प्राणधारण को सफल बनाने हेतु परब्रह्म की साधना, उपासना अथवा आराधना करने की परम्परा रही है। साधना के अन्तर्गत अपने दोष, दुर्गुणों को छोड़ते हुए आत्मनिरीक्षण, आत्म परिष्कार, आत्मशोध द्वारा आत्मिक निर्माण कर आत्मिक विकास के सोपान पर क्रमश बढ़ते रहकर शुद्ध-बुद्ध-जीवन अवस्था को प्राप्त करना है। जबकि उपासना के अन्तर्गत एकाग्रचित्त होकर मानव द्वारा अपने परमपिता के प्रति कृतज्ञता ज्ञापन करना होता है जबकि आराधना के द्वारा हम अघोरेश्वर के बताये मार्ग पर चलकर सामाजिक, राष्ट्रीय ऋण से अपने कर्त्तव्य के द्वारा उऋण होने का प्रयास करते हैं। जिसमें मानव के द्वारा समयदान देकर तन, मन एवं धन से सामाजिक दायित्वों का निर्वहन किया जाना अभीष्ट है यही कारण है कि एक मनुष्य दूसरे भिन्न गुणों के साथ अपनी पहचान रखने में सफल रहता है। प्राणवान व्यक्ति अपनी समस्याओं से पलायन नहीं करता बल्कि संकल्प के साथ उनका सामना कर उसे आसानी से जीत लेता है एवं समाज में अग्रणी होकर नेतृत्व के दायित्व निर्वहन की क्षमता धारण करता है। आध्यात्मिक सत्पुरुष राम कृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, योगी अरविन्द, महर्षि रमण आदि समस्त पुरोधागण अपने आत्मिक शक्ति, प्राणेश्वरी, सर्वेश्वरी, अघोरेश्वरी की उपासना कर ही अपने प्राण को उस उच्चतम स्थिति तक ले जाने में सफल हुए हैं। वह भी अपने जीवन के बोधावस्था के अन्तर्गत। क्योंकि शैशवावस्था, बाल्यावस्था तो जीवन की पोषण अवस्था, संस्कार अर्जन अवस्था होती है। इसके उपरान्त जीवन में बोधावस्था में कर्त्तव्य की विभिन्न अवस्थाओं का जिक्र करते हुये परम पूज्य अघोराचार्य बाबा कीनाराम के द्वारा उक्ति दी गयी है कि ''कथनी करै सो पूत हमारा, करनी करै सो नाती, रहनी करै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी'' यानी अन्त में अपने विकारों से पूर्णत: मुक्त होकर सदाशिव के ही सदृश्य अपने को विनिर्मित कर लेने की निरन्तर कठिन साधना का नाम ''रहनी'' दिया गया है। जो बड़ा ही दुर्लभ एवं अलभ्य है। यद्यपि प्रत्येक व्यक्ति स्वयं का ही शिल्पी है जो अपने गुरु के निर्देशानुसार अपने को तराशता रहता है तथा दुर्विकारों, षड्विकारों से मुक्त होकर करिश्माई मूर्ति की दिव्यता की आभा अपने में लाने में सक्षम हो जाता है। वह अपने अघोरेश्वर, प्राणेश्वर का सच्चा पुजारी होता है। वह सेवा एवं सत्संग के वाहन के साथ बड़ी लम्बी दूर की यात्रा बड़े ही खुशी, सुख सुविधा के साथ प्रसन्नता से करता रहता है उसे अपने गुरु के निर्देशों का पालन करने में आनन्द की अनुभूति होती है, वह अपने प्राण को तदनुसार समुन्नत कर एक आदर्श आचरण उपस्थित कर मानव समाज के लिये न केवल हितकारी, लाभकारी सिद्ध होता है, बल्कि प्रेरणाप्रद होकर अन्य लोगों के जीवन को भी सफल बनाने की सीख प्रदान करता है। उसे परमात्मा द्वारा प्राप्त प्राकृतिक अनुदानों पर संतुष्टि प्राप्त होती है वह सदा अपने में एक असीम तृप्ति का अनुभव करते हुये व्यस्त एवं मस्त जीवन जीने का अभ्यासी हो जाता है। उसे लोभ, मोह या अन्य सांसारिकतायें रंच मात्र भी प्रभावित नहीं कर सकती। वह मृत्यु लोक के मालिन्य को काटने में सहायक बनकर सामाजिक स्तर पर सद्गुरु के कार्य का क्रियान्वयन करके अपने को धन्य बना लेता है। औघड़,

शेष पृष्ठ तीन पर

त्रिवेणी संगम पर ही अवतरण दिवस क्यों?

पिछले अंक का शेष

जब तक यह महामाया, मोहपाश या सीता मध्य में है तब तक जीव को ब्रह्म या लक्ष्मण को राम का साक्षात्कार नहीं हो सकता और बीच में हमेशा महामाया, सीता या भयावह जिज्ञासा का आधिपत्य जीव और ब्रह्म पर छाया रहेगा। जीवन में या ब्रह्माण्ड से महामाया या सीता के अलग हो जाने पर राम लक्ष्मण या ब्रह्म-जीव परमशान्ति नहीं प्राप्त कर सकते। इसी महामाया से मोहपाश, आसक्ति या सीता के लिये यह सारा जीवन संघर्ष चलता रहा है। यह महामाया, मृगतृष्णा, अनन्त जिज्ञासा या सीता सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड या जीवन, मन, मस्तिष्क को आच्छादित किये हुये है। इसी का अस्तित्व है। और इससे इतर सृष्टि, ब्रह्माण्ड या कोई भी अभिव्यक्ति नहीं है। ब्रह्म राम वन में महामाया सीता का त्याग कर स्वराज्य (राम राज्य) में प्रतिष्ठित नहीं कर सकता। उसे वनवासी बना देगा। ब्रह्म या राम जीव के कल्याण के लिये, जनजीवन के कल्याण के लिये जीव या लक्ष्मण को कहकर या उपदेश दे उस महामाया को वन में भेज देगा। जीव या लक्ष्मण महामाया या सीता के मोह में रोता तड़पता रहेगा परन्तु ब्रह्म या राम के आदेश पर उसे माया या सीता का त्याग करना ही होगा। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड माया मय है तो क्या सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का त्याग करना ही पड़ेगा?

महामाया, माया, मृग तृष्णा जो चामुण्डा की भांति संसार या जीवन के दो छोरों के बीच में व्याप्त है, उसे त्यागना या पार करना तो भवसागर या संसार से पार हो जाना है। सन्देह, भय, आशंका की उत्पत्ति मोह, माया या आसक्ति से होती है। यदि मोह, माया या आसक्ति नहीं हो तो यह भय, संदेह, आशंका का महामायावी रूप भी जीव को मोहपाश में नहीं ग्रसित कर सकेगा। हमारे सारे दु:खों का अन्त भ्रम, भय, सन्देह, आसक्ति के मोह पाश से अलग होकर ही सम्भव है। जीव में जितनी ही अधिक मानसिक, शारीरिक या आध्यात्मिक शक्ति है, उतनी ही उसकी माया प्रबल है। और यही माया उसे उसके अनन्त निर्विकार सत्य स्वरूप को जानने नहीं देती। शिष्य ही अपनी ही शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्ति के अनुसार गुरू की शक्ति का अंदाजा लगाता है। वह अपने प्रति आसक्ति या अपनी मानसिक, शारीरिक या आध्यात्मिक शक्ति के मोह जाल, भ्रम या आसक्ति में अन्धा हो भूल जाता है कि गुरु अनन्त शक्तिशाली, मायापति, त्रिगुणातीत, द्वन्द्वातीत एवं सर्वशक्तिमान है। हम अपनी द्वंद बुद्धि, द्वन्द्व, भाव या दृष्टिकोण से उसकी उपासना, आराधना कर फल प्राप्त करते हैं। हम अपनी ही मायावी दृष्टिकोण से छले जा रहे हैं और गुरु जो हमें द्वंदातीत, त्रिगुणातीत, मायापति, सर्वशक्तिमान बनने का वरदान दे रहा है, अपनी मायावी दृष्टिकोण से अभिमानवश ग्रहण नहीं कर पा रहे हैं। अपनी आसक्ति या व्यक्तिगत दृष्टिकोण से मुक्ति पाने के लिये गुरु की शरण में जाना और उन पर पूर्ण रूपेण आश्रित होना ही श्रेयस्कर है।

संसार में जो कुछ भी हम देख, सुन, सोच, समझ रहे हैं वह सब अपने ही मन, मस्तिष्क या स्वभाव का स्वरूप है। हम अपने ही द्वारा विरचित माया के मोह से अंध हो सत्य एकनिष्ठा या निश्चयात्मिका बुद्धि को नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं। अपनी ही माया ने शरीर, मन, मस्तिष्क, विद्या, धन, दौलत, ज्ञान, अज्ञान, मान, अपमान आदि अनेक रूपों को धारण कर हमें पाश में आबद्ध किये हुये है। जिससे हम त्राण नहीं प्राप्त कर पा रहे हैं और इसके मायावी रूप या मोहपाश से पृथक् हुये बिना जीव को ब्रह्म या शिष्य को गुरु का साक्षात्कार नहीं हो पायेगा। इससे दूर होने के लिये हम जितना प्रयास करे उतना ही इसमें फंसते जाते हैं। क्योंकि यही हमारे तन, मन, मस्तिष्क पर छाये हुये है। महामाया या मृगतृष्णा का अन्त क्या होगा? हम सबको यही श्रेयस्कर हैं कि अपनी आसक्ति या माया से विमुख शान्त हो गुरु या ब्रह्म पर पूर्णरूपेण आश्रित हो जाये। अपने तन, मन, मस्तिष्क से भला बुरा, सत्य, असत्य के सम्बन्ध में कोई भी निर्णय न लें। क्योंकि निश्चय ही हमारा एकांगी दृष्टिकोण सत्य के पूर्ण स्वरूप को नहीं पहचान सकेगा। मायातीत, द्वन्द्वातीत गुरु जो कहते हैं, करें, सुनाते हैं, सुनें, निर्द्वन्द्व एवं निश्चित होकर गुरु के सम्बन्ध में कोई अपना व्यक्तिगत विचार या निर्णय न लें। क्योंकि वह निश्चय ही द्वन्द्वातीत, सर्वशक्तिमान एकनिष्ठ है। निश्चय ही इस ब्रह्माण्ड में कुछ भी पाप-पुण्य, भला-बुरा, सत्य-असत्य नहीं है। हम अपने व्यक्तिगत दृष्टिकोण से जिसे भला समझते हैं, भला है, बुरा समझते हैं, तो बुरा है। सत्य, अहिंसा या अच्छाई के प्रति कोई खास निर्णय लेकर हम कर्म विशेष या सिद्धान्त विशेष के प्रति आसक्त या उसके मोह में पड़कर कष्ट उठाते हैं। अत: श्रेयस्कर है कि भला बुरा, सत्य, असत्य, ज्ञान-अज्ञान का अंतर समझे या उनके प्रति आसक्त हुये बिना गुरु आदेशानुसार सब कुछ करता जाये। यहीं त्रिनेत्र त्रिशक्ति, त्रिदेव का संगम प्राप्त होता है।

आज इस त्रिवेणी के संगम पर हम लोग गुरुदेव की जयन्ती मनाने के लिए एकत्रित हुए हैं। यह आवश्यक है कि इसी अवसर पर महामाया के बीज से ज्ञान बीज अन्त: में अंकुरित होने दें और पूर्ण समर्थ गुरुदेव को अपने दृष्टिकोणों, तर्कों, विचारों के मोह जाल में न देखकर उनके निर्द्वन्द्व, त्रैगुण्य रहित स्वरूप को जो त्रिवेणी के संगम पर आवेष्ठित है को पहचानें, अनुभूति करें। गुरुदेव की जयन्ती बनाने का इससे अच्छा अवसर क्या हो सकता है जब तीर्थराज के संगम पर गुरुदेव स्वयं विराजमान हो अपने निर्द्वन्द्व, मोह रहित, त्रैगुण्य रहित, सर्वशक्तिमान स्वरूप को हमलोगों के सम्मुख प्रकट किये हुए हैं।

आश्रम वही हो सकता है जहाँ कि वर्ण व्यवस्था नहीं होता

चौथे पृष्ठ का शेष

कहता है कि हम आपके दास हैं, आपके भक्त हैं। उसको मेरे में कहाँ तक विश्वास है? यदि उसमें आपका विश्वास है, निष्ठा है फिर मनुष्य की क्या आशा करते हैं? ये मनुष्य न कुछ बिगाड़ सकते हैं न कुछ बना सकते हैं। अभी आप बंगला देश का देख लीजिये। लाखों लाखों व्यक्ति गये उसको मारने के लिये गये पर वह व्यक्ति बच भी गया और राष्ट्रपति भी हो गया। जाको राखे सांइया मार सके ना कोई। तो आप सोच लीजिये आपका विश्वास, आपका निश्चय, आपका अनुष्ठान, मुजीब से भी ज्यादा बढ़ कर हो सकता है।

विश्वास, निष्ठा देखिये। एक व्यक्ति था प्रह्लाद, इसी हिन्दुस्तान का। पूरे दुनिया का शासक था उसका पिता हिरण्याक्ष। इनसे भी ज्यादा बड़ा भारी राष्ट्र का था। इनसे तो कुछ लोग मिले भी थे जैसे हिन्दुस्तान, हमलोग मिले, इधर के मिले, उधर के मिले। यह अकेला लड़ता था। शिक्षा में भी प्रवीण नहीं था। उसका कोई साथी नहीं था। मास्टर, प्रोफेसर भी अब उसका साथ नहीं दे रहे थे। सब लोग उसका दुराव कर रहे थे। घर, परिवार, कुटुम्ब भी दुराव कर दिये। हटावो इसको, शक्ति के साथ, बादशाह के साथ विरोध कर रहा है। इसका कौन साथ देगा? कौन सूली पर चढ़ेगा? मगर उसके दृढ़निश्चय, दृढ़ प्रतिज्ञा और ईश्वर में सच्चा विश्वास, उस परमात्मा में, दैव में सच्ची उसकी निष्ठा ने पूरे हिरण्याक्ष का तख्ता पलट दिया। पलट के उसका शासक बन गया, उस प्रह्लाद ने। कोई सपना में भी नहीं सोच सकता था कि ऐसा भी होगा।

नहीं! आपमें बड़ा ही बल है। बड़ा ही साहब है। आप बहुत बड़े वस्तु हैं। आप कभी नहीं सोचते आप चिंगारी है और इतने बड़े प्रज्ज्वलित चिंगारी हैं कि आप बहुत भस्म कर सकते हैं। फिर आप आश्रमों में रह रहे हैं और वर्ण की चिन्ता करते हैं।

आज जितने भी बड़े नेता देख रहे हैं, वर्ण की चिन्ता को भुलवा कर, वर्ण को पीछे ढकेल कर, तब ये लोग इतनी अवस्था में पहुँच सके हैं। आप भी पहुँच सकते हैं। आप भी कर सकते हैं और इस बात को हमारे निश्चय रखियेगा, आप हेय दृष्टि से अपने ग्रामीण, उस कास्ट वालों को नहीं देखे रहते तो इस तरह की परिस्थिति हमलोगों को कमजोर नहीं कर सकती। सब हमारे आदरणीय होते और हम सबके आदर के पात्र होते अच्छा रहा यह विषय आश्रम और वर्णशाला जिससे यह हमने कह दिया और कभी-कभी आपको कहूँगा।

प्राण

द्वितीय पृष्ठ का शेष

अघोरेश्वर की वाणियाँ ऐसे प्राणधारियों के लिये साधन, संजीवनी का कार्य करती है। जीवन की आपाधापी, अत्यधिक चंचलता, व्यर्थ मानसिक भागदौड़ को धता बताते हुए एक शांत, निर्विकार शुद्ध-बुद्ध जीवन जीने की कला परम पूज्य बाबा कीनाराम की इन पंक्तियों द्वारा परिलक्षित होता है, जिसमें परमपिता के व्यापकता की विवेचना कर मानव समुदाय को शान्तचित्त बनाये रखने का सद्परामर्श अंकित है ''फिकर छाड़ि दे जिकर किया कर, अजब रंगीला मौला है, जब तुम रहे गर्भ के भीतर, वहाँ खर्च किन तौला है? आधे छोड़ पूरी को धावे, सिर पर माँटी धौला है, कीनाराम अलमस्त फकीरा देने वाला मौला है'' कहने का तात्पर्य है कि यदि हमारा समाज चिन्ता से रहित होकर अपने मन मस्तिष्क से परमपिता के इस पावन सांसारिक उपवन में माली की भांति कार्य करते हुए विचरण करे, रमण करे तो उसे सुपाच्य, स्वादिष्ट मीठे फलों की कमी कत्तई नहीं होगी क्योंकि वह इसका सेवन माँ के गर्भ से अनायास करता आ रहा है।

सत् विचारों का प्रागट्य ही ईश्वर के आगमन का पूर्वाभास है

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी का आशीर्वचन

धर्मबंधुओं,

आत्माराम के कीर्तन के बाद श्रीगुरुदेव ने कहा उपस्थित मातायें एवं धर्मबंधुओं, आज गोष्ठी का तीसरा दिन है। बहुत से आपके मित्र सहयोगी अपने नगर को जा चुके है। निरर्थक चर्चा नहीं है। अभी तक के विचार सराहनीय एवं शोभनीय थे क्योंकि सार्थक बातें थीं। हमारे विश्रामपुर के ठाकुर साहब कह रहे थे कि हम लोगों में वैमनस्य क्यों होता है? मनुष्य की कमजोरी है द्वेष। घृणा, ईर्ष्या करने वाले मनुष्य न होकर शैतान होते हैं। मानव तन में क्रूर आत्मायें राक्षसी प्रवृति हैं। स्वार्थ का टकराव झगड़े का कारण है। आप अपने को उस बुराई से बचावें। शैतान इंसान बन कर आता है। उनको पहचानिये। अपना हाथ इंसान को दें, न कि शैतान को। ईश्वर भी आपकी अनजान में रक्षा करेंगे। जान बूझ कर बुराई करें तो वह आपकी रक्षा नहीं करेगा। ईश्वर उसी की मदद करता है जो अपनी मदद स्वयं करते हैं। सज्जनों को शैतान की दृष्टि से ओझल रहना चाहिये। किसी को बुरा कहने को अंगुली न उठावे क्योंकि ऐसा करने से एक अंगुली उसकी ओर होगी तो तीन अंगुलियां आपकी ओर होंगी। ऐसा चर्चा यथा सम्भव सभाओं में न करें। वाणी का उपयोग सन्तों, पवित्र कर्मों की सराहना में लगावें।

पंडाल में आये अबाल वृद्ध नारियों के लिये यह बातचीत है। वशीकरण एक मंत्र है तज दे वचन कठोर। सहयोग नम्र होने से स्वयं मिलेगा। साथ ही प्रसन्नता मिलेगी। अपनी वाणी को दूषित करने से हृदय का हुलास दूषित ही जाता है। यह अशोभनीय है। शाबर मंत्रों का प्रयोग सभी करते पाये जाते हैं। ये स्वयं सिद्ध हैं। इसका प्रयोग रोज करके कुपरिणाम पाते हैं। महिलायें प्राय: इन बातों का प्रयोग करके औरों की उपेक्षा की पात्र बनती हैं। कुछ लोग वंश वालों पर इनका प्रयोग करते हैं। सह लेते हैं। परन्तु दूसरे नहीं करेंगे।

निर्मल वाणी का प्रयोग ही सभी को वश में लावेंगा। जिन बातों से आपको दु:ख हो दूसरों के लिये कभी न करें। यदा कदा अपभ्रंश शब्द निकल भी जाय तो उनसे बचने का संकल्प लेवें।

मन स्वस्थ, सबल बनाने वाले काम करें। मन को खेद देने वाले कर्म न करें उनसे भविष्य अन्धकार मय दिखता है। अच्छे वायुओं, देवताओं तथा शब्द के अविर्भाव से मन प्रसन्न होता है। दु:सह वायु के आने से बुरे कामों में प्रवृत्ति होगी। ज्ञान से उसे पहचान कर बचने का प्रयास करे। पवित्र वायु के प्रवेश में अच्छे आचरण स्वयं होने लगेंगे। यही देव कृपा की पहिचान है। उस समय के संकल्प करगत आमलक के समान सुगम होंगे। इसलिये महात्माओं, सन्तों, विद्वानों के सत्संग से नाड़ी की गति सुधरे तथा देव के प्राकट्य से हम पुन: अच्छी कामों में लग सके। इनको सदा पहचानने की चेष्टा करें। ज्ञान का यही सच्चा उपयोग है। ज्ञान भी अपनी ही स्मृति है। वेद आदि भी इन्हीं ज्ञानों की श्रुति स्मृति हैं। केवल उसे भाषाबद्ध किया गया पुस्तकाकार रूप दिया गया। आपके अन्दर का देवता, आपको अच्छा, भला बुरा बतला देगा। इन संकेतों का सुनने वाला बुरे से बचेगा, अच्छा बनेगा। वह बिना शारीरिक कष्ट के विचार मात्र से मिलेगा।

मंत्र जाप से नाड़ियों को स्वस्थ एवं स्वच्छन्द बनाया जाता है। आने वाली घटनाओं का पूर्वाभास मिलता है। ईश्वर का आगमन भी इसी प्रकार मंत्र का स्वयं उच्चारण रोमांच, सत्पुरुषों का दर्शन, अच्छे विचार आना, आत्म देवता के मन में प्रागट्य का पूर्वाभास है। आप उस प्रसन्नता को शब्दों में नहीं कह सकते। यह सभी को सुलभ है। साधु, महात्मा, फकीर, मूर्ख नहीं है। वे आनन्द के खोज में लगे हैं। मति की गति के मुताबिक सत्संग के प्रभाव को वही जानता है जो सत्संग करता है। बुरा साथ वाला नहीं बता सकता। बड़ों की संगति करें अच्छे विचार वाला ही बड़ा है चाहे वह नीच कुल में भी क्या न पैदा हुआ हो। मीरा, रविदास की शिष्या थी। वैष्णव आन्दोलन के समय भी ऐसा हो चुका है। आज सभी की जबान पर मीरा की चर्चा है। राजे, महाराजे, सेठों को तो उनके जीवन में भी सभी न जान पाये। पर सन्तों को लोग घर, घर, गाँव-गाँव जानते हैं। इसीलिये उनको अमर कहा जाता है। विद्वान क्या भोले भोल गंवार भी उन्हें न भुला सके। उनके साथ वाले भी, साहित्य काव्य, विचारों में स्थान पाकर अमर हो जाते हैं। मंत्र, क्रिया, ध्यान-धारण का यही सत्फल है। थोड़ा सुनें, उसकी चर्चा करें, उसमें नये बात विचार उत्पन्न होंगे।

आश्रम वही हो सकता है जहाँ कि वर्ण व्यवस्था नहीं होता

धर्मबंधुओं,

आज हम लोग शक्ति के आराधना के साथ नये साल का शुभारम्भ कर रहे हैं। इस अवसर पर अभी जो आश्रम और वर्ण के बारे में आपको कहा गया था, वह बहुत टेढ़ा नहीं है। वह बहुत सरल और सुगम है। आप जब तक आश्रम में रहिये तब तक वर्ण विशेष का ख्याल न रखिये। वर्ण विशेष, मैं ब्राह्मण हूँ, क्षत्रिय हूँ, मैं डोम हूँ, मैं चमार हूँ इस तरह का यदि आप ख्याल रखेंगे तो आप आश्रम में नहीं रह रहे हैं। आपका आश्रमी जीवन नहीं है। आपके हृदय में आश्रम के प्रति स्नेह नहीं है। आप कभी भी अपने जीवन में आराम का वरण नहीं कर सकते चाहे वह गृहस्थ आश्रम हो चाहे वानप्रस्थ आश्रम हो।

आप गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम की हामियां तो भरते हैं। आप कहते हैं कि हम गृहस्थ आश्रम में बहुत कुछ करते हैं, हम साधु से भी अच्छे हैं क्योंकि हम उनको भी देते हैं। ठीक है, आप बहुत देते हैं। वह अच्छा है क्योंकि उनकी दशा तो हम भी समझते हैं कि वे कहते हैं कि हम तो सर्वशक्तिमान परमात्मा के पुजारी हैं फिर भी घर घर का भिखारी बनकर घूमते हैं। घर-घर का भिखारी बन कर वे इसीलिये घूमते हैं। बहुत सी मातायें धनी होकर भी भिक्षा माँग कर भगवती की पूजा करती हैं। इसलिये कि हे भगवती मुझे इस धन का, पौरुष का अभिमान नहीं है।

तो इसी निमित्त यह विषय रखा गया था कि जब तक आप आश्रम धर्म निर्वाहते हो, इस आश्रम में आकर निवाहते हो या अपने गृहस्थ आश्रम में रहते हो या वानप्रस्थ आश्रम में रहते हो, जब तक आश्रम धर्म निबाहते हो तब तक वर्ण व्यवस्था के प्रति, वर्ण के प्रति कुछ सोचते हैं, कुछ करते हैं तो आप कुछ नहीं करियेगा। आप देखिये अपने प्राइम मिनिस्टर को। वो हैं ब्राह्मण। वर्ण व्यवस्था के प्रति कुछ नहीं सोचती हैं। हरिजन के साथ भी खा लेती हैं। यदि ऐसा एको दिन करती तो कोई हरिजन उनको ओट देता। तो आप भी इसको समझ कर इस तरह का जो लाभ होने वाला है, उसको उठाइये।

आपके नौकर चाकर भाई बन्धु यदि इस तरह के छोटे कास्ट के लोग हैं तो उनके साथ दुराव न रखें। दुराव रखियेगा, घृणा करियेगा तो भविष्य अपना समर्थन नहीं करेगा। एक तरह का अपने में बहुत त्रुटियां पैदा होंगी, कमजोरियां पैदा होंगी। कोई मदद नहीं करेगा। आपके वर्ण वाले आपकी मदद नहीं करेंगे तो दोसरा काहे को मदद करे भाई? इसी दृष्टि से ठोस बात इतनी ही है कि आप जब तक आश्रम रहते हैं, किसी कास्ट के प्रति, किसी वर्ण के प्रति संदेह की भावना न रखें कि वह डोम है, वह चमार है। हम ब्राह्मण हैं क्षत्रिय हैं। आश्रम वही हो सकता है जहाँ कि वर्ण व्यवस्था नहीं होता। जहाँ वर्ण व्यवस्था हो, वहाँ आश्रम नहीं है।

अनुष्ठान

हम लोगों में तो कई कमजोरियां हैं। हम उस परमात्मा से भगवती से कहते हैं कि हमारा पूर्ण विश्वास है। आप पर हमारा पूर्ण विश्वास है आप हम पर दया कीजिये। कहाँ हमारा पूर्ण विश्वास है? पूर्ण विश्वास रहता तो उससे दया की याचना करते। तुलसीदास की एक चौपाई है, आप लोगों को भी याद होगा—

मोर दास कहाई करे नर आस।
कहो कहा लग मोहि ताहि विश्वास।।

मेरा दास कहा करके, मेरा भक्त कहा करके, मनुष्य की आशा करता है और

शेष पृष्ठ तीन पर

अघोर सूत्र

☞ **सामान तो एकत्र किया सौ दिन का किन्तु जिन्दगी है दो दिन की। बिस्तर से उठ नहीं पाते, संसार से उठ जाते हैं।**

अघोरेश्वर महाप्रभु बाबा भगवान रामजी